नवजागरण और 1857

* प्रोफेसर जयसिंह नीरद

इसे एक विडम्बना ही कहा जायेगा कि 1857 के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के ऐतिहासिक महत्व की निर्विवाद स्वीकृति के बावजूद उससे जुड़ा इतिहास लेखन अपने-अपने उद्देश्यों, स्वार्थों और अवसरवाद से प्रेरित होने के कारण बेहद विवादास्पद और अन्तर्विरोधों से भरा है। इतिहासकारों ने 1857 के सम्पूर्ण घटना क्रम को राजनीतिक चश्मे से जिस तात्कालिकता के साथ देखा है, उसकी परिणति यही होनी थी। यदि हम इसे सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य के राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में स्वाभाविक रूपान्तरण की दृष्टि से देखते तो निश्चय ही हम अधिक संगत और मूलगामी निष्कर्षों तक पहुँच सकते थे। दरअसल 1857 की जड़ें सिपाही-असंतोष अथवा किसान-मजदूरों के शोषण में पूरी तरह मौजूद नहीं हैं बल्कि वे उस दौर तक जाती हैं जब भारतीय जनमानस उपनिवेशवाद के सांस्कृतिक आक्रमण, पश्चिम आधुनिकीकरण का सामना जातीय अस्मिता को उभारने वाले शस्त्रों से करने का मन बना रहा था। इस उद्वेलित, क्षुब्ध, सम्मोहित और भयभीत भारतीय अन्तर्मानस को समझे बिना हम 1857 के चरित्र को न केवल समझने में असमर्थ रहते हैं बल्कि उसका ऐसा इतिहास लिखते हैं जो उपनिवेशवादी शक्तियों के लिए तब की अपेक्षा आज के दौर में अधिक प्रासंगिक है। आज जबकि उपनिवेशवाद बाजार का मुखौटा लगाकर जन को जिन्स में तब्दील करने में लगा है, तब हमें अपने प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के अधूरे राजनीतिक परिप्रेक्ष्य को उसकी सांस्कृतिक जड़ों तक पहुँचकर उसे समूची और संगत व्याख्या देनी होगी। इसके लिए यह आवश्यक ही नहीं अपरिहार्य है कि 1857 को भारतीय नवजागरण से जोड़कर देखा गया है।

अतीत ने हमारे देश के लोगों को हर युग में अपने ढंग से प्रेरित और प्रभावित किया है। भारतीय अंतर्मानस अतीत से आक्रांत हुए बिना नहीं रह सकता। किंतु हर बार वह अतीत की सीमाओं को लाँघने का प्रयास करने में नहीं चूकता। अपने को जानने और रेखांकित करने की छटपटाहट उसे अतीत से मुठभेड़ करने की प्रेरणा और शक्ति देती है। भक्तिकाल का लोक जागरण इसी छटपटाहट की रचनात्मक परिणति थी। उपनिवेशवादी दौर में जब एक और परंपरा छाती पर लदने लगी थी और दूसरी और पश्चिम आधुनिकीकरण के लुभावने तथा साम्राज्यवाद के डरावने हथियार माँझ रहा था, हमारी पहचान का संघर्ष न केवल जटिल बल्कि बहुआयामी भी हो गया था। इस चुनौती पूर्ण और ऐतिहासिक दौर में जहाँ हम अतीत के समुद्र मंथन में परम्परा के सार्थक अंश को खंगाल पाने की कोशिश कर रहे थे, वहाँ दूसरी ओर पश्चिम से रीझ और खीझ : ग्रहण और विसर्जन अथवा भय और संभ्रम के उद्वेलनों का उबाल महसूस करने लगे थे। इस उबाल मे हम कुछ अपने काम का पकाने की तैयारी भी कर रहे थे। ऐसे में अपनी पहचान को अर्थ देने और उस अर्थ को रेखांकित करने का यह बहुआयामी जटिल संघर्ष ही नवजागरण का कुतुबनुमा बना। ''भारतीय नवजागरण का लंबा संघर्ष केवल आधुनिकता के लिए ही नहीं, जातीय आत्म पहचान के लिए भी था। यह संघर्ष एक अनऔपनिवेशिक आधुनिकता के लिए था। इतिहास, मानवीय मूल्य और संवेदना, लोकतांत्रिक अधिकार, शिक्षा विवेकवाद, धर्मनिरपेक्षता, बहुस्तरीय राष्ट्रीय मुक्ति तथा विश्वमानवतावाद की नई अवधारणाएँ सामने आयी थीं।[1]'' ऐसा लगता था, जैसे पूरी दुनिया अपनी तरह से खौल और उबल रही थी किंतु ऐसा नहीं है कि नवजागरण में सबकुछ नये में बदल रहा था। बल्कि भारतीय नवजागरण अपनी अंत: प्रकृति में धर्म केंद्रित था। नवजागरण से प्रेरित जो भी आंदोलन इस देश में उठे, उनके मूल में धर्म कहीं न कहीं मौजूद था। इस आधार पर यह मान लिया गया कि ''इन आंदोलनों की धर्म पर निर्भरता ने इनमें संकीर्णता और कट्टरता ला दी, जो आगे चलकर सांप्रदायिकता का कारण बनीं[2]।'' वस्तुत नवजागरण के इस दौर में अतीत से जो मुठभेड़ हुई, उसमें धर्म का सामना किये बिना अतीत को चुनौती नहीं दी जा सकती थी। दरअसल, नवजागरण से पहले पुराणाश्रित धर्म ही हमारी पहचान को रेखांकित करता था। ऐसा धर्म, जिसमें बहुत से नकारात्मक तत्व अपनी जड़ जमा चुके थे। इसलिए नवजागरण के पुरोधाओं को सबसे पहले धर्म के मूलभूत प्रश्नों से ही जुझना पड़ा। किन्तु धर्म तो उनकी यात्रा का एक पडाव था। धर्म से समाज सुधार और समाज सुधार से धर्म अपनी सांस्कृतिक आत्मपहचान और उससे आगे बढ़कर उन्हें अपनी अगली पीढ़ी को राजनीतिक आत्म पहचान का आधार देना था, जिसका सहज और स्वाभाविक परिणाम है 1857 का प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम, जो अन्तत: हमारी स्वतन्त्रता से फलीभूत हुआ। ''भारतीयता को एक सांस्कृतिक वास्तविकता से राजनीतिक वास्तविकता में बदलने में नवजागरण और स्वतन्त्रता आन्दोलन ने ऐतिहासिक भूमिका निभाई थी। महान् परम्पराओं में निथुरी भारतीयता ही उस युग में आधुनिक सम्पर्कों के साथ राष्ट्रीयता की बुनियाद प्रेरणा बनी[3]।''

इसमें कोई सन्देह नहीं कि नवजागरण के अग्रणी विचारकों और समाजसुधारकों में कोई भी ऐसा नहीं है, जिसने हिन्दू धर्म की मूलभूत समस्याओं, प्रश्नों और विडम्बनाओं पर नये परिप्रेक्ष्य में विचार न किया हो किन्तु यह भी सच है कि इनमें से किसी का भी धार्मिक चिन्तन आत्मगत और पलायनवादी नहीं है। सभी ने धर्म को अपने समय और समाज की कसौटी पर परखना चाहा। बंगाल जहाँ से भारतीय नवजागरण का प्रारम्भ हुआ, उसने कुछ समय बाद जनता की राजनीतिक चेतना को भी व्यापक रूप से प्रभावित किया[4]। दूसरे देश में कहें तो यह धर्म केन्द्रित नवजागरण ही अन्तत: इस देश की राष्ट्रीय चेतना का वाहक बना।

नवजागरण के पुरोधाओं ने धर्म को लेकर तो विचार मंथन किया ही किन्तु इसके साथ-साथ उन्होंने स्वतन्त्रता और समानता पर बल देते हुए राष्ट्रवाद का मार्ग भी प्रशस्त किया। स्वामी विवेकानन्द, जिन्हें हम आध्यात्मिक सन्त के रूप में जानते हैं अथवा स्वामी

निदेशक, क. मुं. हिन्दी तथा भाषा विज्ञान विद्यापीठ, डॉ. बी. आर. अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा

दयानन्द, जिन्हें हम आर्यसमाज के आलोक स्तम्भ के रूप में प्रतिष्ठत करते हैं, उन्होंने और ऐसे नवजागरण के अनेक अग्रदूतों ने राष्ट्रीयता के उभार में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। स्वामी विवेकानन्द ने जहाँ प्राचीन परम्पराओं के आलोक में भारतीय राष्ट्रवाद को नयी शक्ति दी, वहाँ स्वामी दयाननद ने स्वराज शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग करते हुये जनता को स्वदेशी वस्तुएँ अपनाने का आह्वान किया और हिन्दी को भारत की राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित किया। राजा राममोहनराय भले ही सीधे ब्रिटिश साम्राज्यवाद का प्रतिरोध नहीं कर रहे थे किन्तु वे शिक्षा के प्रसार एवं विज्ञान, प्रौद्योगिकी के अधिकाधिक सुलभ किये जाने के लिए पूर्णत: समर्पित थे। कहने की आवश्यकता नहीं कि शिक्षा,विज्ञान और प्रौद्योगिकी के अधिकाधिक प्रसार के बिना भारतवासी उपनिवेशवाद के विरोध में खड़े नहीं हो सकते थे। भारतीय जनमानस में ब्रिटिश साम्राज्यवाद को लेकर जो हीनता ग्रंथि बन गयी थी, राजा साहब उसी का उन्मूलन करके एक सशक्त और विवेकवान पीढ़ी तैयार करना चाहते थे, जो भविष्य में परिवर्तन की मशाल अपने हाथों में ले सके। 11 दिसम्बर 1823 को लार्ड एमहर्स्ट को लिखे अपने पत्र में उन्होंने अपनी भविष्य की योजना को इस प्रकार प्रस्तुत किया। ''परन्तु सरकार का उद्देश्य यदि इस देश की पिछड़ी आबादी को विकसित करना है तो अच्छे परिणाम देने वाली एक अधिक उदार एवं उदात्त अध्ययन व्यवस्था का निर्माण करना होगा और गणित, प्राकृतिक विज्ञान, रसायनशास्त्र एवं शरीर रचना विज्ञान जैसे उपयोगी विषयों की पढाई के लिए यूरोप के अध्ययनशील एवं मेधावी महानुभावों को नियोजित करना होगा एवं इसके लिए समुचित राशि उपलब्ध कराने की दिशा में प्रस्ताव लाना होगा। साथ ही यथेष्ट ग्रंथों, यंत्रों एवं प्रयोग सामग्रियों के साथ एक कॉलेज खोलने का भी प्रावधान करना होगा[6]।''

वस्तुत: कार्यशैली कैसी भी हो, नवजागरण से जुडी प्राय: सभी महान विभूतियों ने धर्म को लेकर तार्किक चिन्तन को अपना प्रस्थान बिन्दु मानकर नवजागरण को एक सांस्कृतिक वास्तविकता के रूप में व्याख्यायित किया और इसी सांस्कृतिक वास्तविकता की कोख से उस राजनीतिक वास्तविकता का जन्म हुआ, जिसने 1857 के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम की पृष्ठभूमि निर्मित की। धार्मिक उपदेशों के साथ-साथ आंदोलन के नेताओं ने स्वतन्त्रता और समानता का भी उपदेश दिया। भारत के समसामयिक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में इस स्वतन्त्रता का अर्थ मात्र बौद्धिक चिन्तन की स्वतन्त्रता से ही नहीं, बल्कि असमानता, शोषण और अत्याचार से मुक्ति भी था।[7]'' 1857 को केन्द्र बनाकर जिन इतिहासकारों ने उसके कारणों और फलितार्थो का विवेचन किया, उनकी सबसे बडी सीमा यह थी कि उन्होंने इस ऐतिहासिक घटना के स्रोतों की पड़ताल आवश्यक नहीं समझी और तत्कालीन परिस्थितियों के दबावों में सीमित रहकर अवमूल्यन अथवा अधिमूल्यन की फिसलन में रपटते चले गये।

'आकार' पत्रिका के दिसम्बर 2005 के अंक में प्रियवंद की पुस्तक '1857 एक धूसर कोलाज' का एक अंश प्रकाशित किया गया। यों तो 1857 का सम्पूर्ण प्रकरण स्वयं में शीशे की तरह साफ और स्पष्ट है (यदि कोई बुक्का फाड़कर अपने को कोसने की प्रवृत्ति छोड़ सके तो) किन्तु प्रियंवद इस महान् घटना को अपने पूर्वाग्रहों और फतवों से धूसरित ही नहीं, पंकायित करने से भी नहीं चूकते। वे इस देश की उस जनता को गरियाने से भी नहीं चूकते, जिसका संघर्ष और बलिदान अब हमारे इतिहास की धरोहर होने के साथ हमारी प्रेरणा का स्रोत भी है। वे फतवा देते हैं कि धर्म और सम्प्रदाय की विघटनकारी प्रवृत्तियों में धीरे-धीरे धँसते जाने वाले ये दोनों समाज हिन्दू और मुस्लिम समाज जनक्रान्ति के योग्य कभी नहीं थे[8]।''

लगे हाथों उन्होंने रामविलास जी पर अपनी तलवार भाँजी और शिकायत की कि एक मार्क्सवादी विचारक, पतनशील सामंतों के सिपाहियों को महान् जननायक बताकर उन्हें जनक्रान्ति का अगुआ बना रहा है[9]।

प्रियंवद जी के दुख से हमें सहानुभूति है किन्तु वे सम्भवत: यह भूल गये कि भले ही ऊपर से नेतृत्व सामन्तों का रहा हो किन्तु इस संग्राम की समूची कमान इन सिपाहियों के हाथ में थी, जो किसी राजा या सामन्त के यहाँ अपना वेतन बढवाने या नौकरी माँगने नहीं गये थे बल्कि विदेशी उपनिवेशवाद से इस देश को आजाद कराने निकले थे। प्रियंवद इन देशभक्त सिपाहियों के मुँह पर कालिख लगाने के लिए एक और ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करते हैं। ये वही सिपाही थे, जो कुछ महीने पहले तक अंग्रेजों के साथ मिलकर पूरे भारत की जनता को रौंद रहे थे, देश को उनका गुलाम बना रहे थे। इन्हीं के दूसरे साथियों ने सिर्फ चार महीने के अन्दर अंग्रेजों की तरफ से लड़कर इनकी रीढ़ तोड़ दी थी[10]।

प्रियंवद जी को इस स्वतन्त्रता संग्राम से पहले के सिपाही दिखाई पड़ रहे हैं, जो धीरे धीरे गुलामी की बेड़ियों का एहसास कर रहे थे। उन्हें वे सिपाही भी नजर आते हैं जिनमें गुलामी का एहसास मर गया था किन्तु उन्हें वे सिपाही कहीं नहीं मिलते, जो सिंहनाद करते हुए हर तरह के कष्ट उठाते हुए प्राणपण से इस देश को औपनिवेशिक गुलामी से आजाद कराने के लिए जूझ रहे थे। प्रियंवद जी यदि सारे सिपाही आजादी की लड़ाई में कूद पड़ते तो 24 घंटे में ब्रिटिश साम्राज्य का कोई नाम लेवा नहीं रहता। जब पहली बार स्वतन्त्रता की पुकार होती है तो तब चुनौतियाँ भी उतनी ही विकराल होती हैं। इन विकराल चुनौतियों का डटकर सामना करने वाले ये सिपाही तब तो और भी प्रणम्य हैं।

प्रियवंद ने एक लम्बी चौड़ी फेहरिस्त उन कॉलेजों और विश्वविद्यालयों की दी हैं जो 1857 से ठीक पहले तथा 1858 तक अंग्रेजों द्वारा स्थापित किये गये थे। किसी सफल उद्घोषक की तरह वे उद्घोषणा करते हैं कृपया ध्यान दें कि जब यह स्वाधीनता संग्राम लड़ा जा रहा था, या साम्राज्यवाद से मुक्ति का जन संघर्ष चल रहा था, अंग्रेज निश्चिन्त होकर अपने साम्राज्य के स्थिर व दृढ़ आधार के लिए व भारतीयों की निरन्तर माँग पर महत्त्वपूर्ण विश्वविद्यालय खोल रहे थे[11]।

यहाँ सवधीनता संग्राम तथा साम्राजयवाद से मुक्ति को जनसंघर्ष को कोमाबद्ध करके वे इनकी खिल्ली तो उड़ा ही रहे हैं, साथ ही उस समय की स्वतन्त्रता संघर्ष में लामबन्द जनता को फटकार भी रहे हैं कि अरे कमबख्तों देखो तो अंग्रेज बहादुर तुम्हारी ही माँग पर तुम्हें सभ्यता और तमीज सिखाने के लिए विश्वविद्यालय पर विश्वविद्यालय खोले जो रहे हैं और तुम खामखां आजादी आजादी चिल्ला चिल्ला कर तलवार भाँज रहे हो। 1857 के इस स्वतंत्रता संग्राम पर ब्रिटिश साम्राज्य के कट्टर खैरख्वाह राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द ने भी लिखा था जिस जमीन में लो ग गाय भी न चराते, वहाँ अब पक्के बंदोबस्त की बदौलत किस्त ब किस्त मालगुजारी अदा करके पाँव फैलाए सोते हैं, जिन रास्तों में बकरी की गुजर न थी, वहाँ बग्गियाँ दौड़ती हैँ, जहाँ अशर्फियों की बहली मयस्सर न थी, वहाँ आनों पर रेलगाड़ियाँ हाजिर है, जहाँ कासिद नहीं चल सकता था, वहाँ तार की डाक लग गयी[12]।

प्रियंवद जी भी विश्वविद्यालयों के खुलने का हवाला देते हुए जब 1857 के सारे किये कराये पर पानी फेरने लगते हैं, तब वे 1854 के शिक्षा पर जारी चार्ल्स वुड के डिस्पेच को भूल जाते हैं, जिसमें स्पष्ट कहा गया था कि सरकार की शिक्षा नीति का उद्देश्य पाश्चात्य शिक्षा का प्रसार है उच्च शिक्षा के लिए सबसे माध्यम अंग्रेजी है। देशी भाषाओं को भी प्रोत्साहित किया जाएगा क्योंकि ऐसा समझा गया कि यूरोपीय ज्ञान देशी भाषा में ही साधारण जन तक पहुँच पाएगा। जिन विश्वविद्यालयों कलकत्ता, बम्बई और मद्रास की स्थापना की गयी, उनका पूरा स्वरूप लन्दन विश्वविद्यालय पर आधारित होगा[13], प्रियंवद गदगद हैं, वे उस समय की जनता के अन्तर्मानस को इसलिए छेद देते हैं क्योंकि 1857 का संघर्ष केवल स्वतन्त्रता संग्राम नहीं है बल्कि वह भारत के लोगों का जातीय आत्मपहचान का भी संघर्ष है और अब जनता जातीय आत्मपहचान के लिए लड़ती है, तब न रेलों का महत्त्व होता है न तार संचार का, न सड़कों का ध्यान रहता है, न ब्रिटेन से आए तैयार माल का। तब मन मस्तिष्क में एक ही झंझावात थपेड़े लेता है कि हमें विदेशी दासता से मुक्त होकर अपनी सांस्कृतिक पहचान को रेखांकित करना है।

अंग्रेजों ने जहाँ अपनी तलवार और तकनीक के बल पर अपने साम्राज्य को मजबूत किया, वहाँ उन्होंने हिन्दू और मुसलमानों में फूट डालकर उन्हें आपस में लड़ाये रखा। यह निर्विवाद है कि 1857 के स्वतन्त्रता संग्राम को हिन्दुओं और मुसलमानों ने कन्धे से कन्धा मिला कर लड़ा। इस महान घटना का विश्लेषण जिन इतिहासकारों ने किया, उनके निष्कर्षों में अच्छा बुरा सब कुछ है किन्तु प्रियंवद जी अकेले ऐसे मीमांसाकार हैं जिन्होंने इस स्वतन्त्रता संग्राम का सबसे खतरनाक फलितार्थ निकाला है। उनकी दृष्टि में 1857 के विद्रोह के दो महत्वपूर्ण परिणाम हुए। पहला यह कि सार्वभौमिक मुगल साम्राज्य का अंत हो गया। दूसरा यह कि इस घटना के बाद से हिन्दू और मुसलमान दो अलग अलग धर्मों, सम्प्रदायों और राष्ट्रीयताओं के रूप में पहचाने जाने लगे जो 1847 तक विप्लव में था उससे पहले कभी नहीं हुआ।[14]

पहले तो साफ हो जाना चाहिए कि 1857 तक मुगल साम्राज्य न सार्वभौमिक रह गया था और न शिक्तिशाली। बहादुर शाह ज़फर अतीत के महान मुगल साम्राज्य के प्रतीक भर थे। दूसरे जिस अलगाव की बात प्रियवंद कर रहे हैं, वह अलगाव 1857 की देन नहीं। वह अंग्रेजों की कूटनीति की स्वाभाविक परिणति है। वे तो पाकिस्तान की अवधारणाका बीज 1857 को मानते हैं। अब इस पर क्या टिप्पणी की जाये। बस एक प्रश्न पूछने का मन करता है यदि 1857 के स्वतन्त्रता संघर्ष में हिन्दू और मुसलमान कंधे से कंधा मिलाकर न लड़ते तो क्या पाकिस्तान न बनता? कुतर्क कहाँ जा सकता है इसका यह एक दुखद उदाहरण है।

1857 को स्वतन्त्रता संग्राम होने से नकारते हुए प्रियंवद एक मौलिक स्थापना करते हैं सच तो यह है कि इन कथित निर्मित नायकों के मुकाबले बाद में अंग्रेजों के साथ लड़ते हुए देश की जो पूरी नयी पीढ़ी हँसते-हँसते फाँसी के फन्दों पर झूल गयी, वे सचमुच स्वाधीनता की लड़ाई के नायक थे[15]।

फाँसी पर झूल जाने वाली इस नयी पीढ़ी को हम भी प्रणाम करते हैं किन्तु जिन्हें प्रियवंद कथित और निर्मित नायक कहते हैं, वे फाँसी के फन्दों पर नहीं झूले? उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्य से लड़ने में अपना खून वहीं बहाया? वे चाहते तो अपने प्राण बचाकर जीवन यापन कर सकते थे किन्तु तब इतिहास के शिलालेख में उनके नाम शोभा नहीं पाते। इन रणबांकुरों के सारे किए कराऐ पर पानी फेरकर प्रियवंद कुछ सजग हो जाते हैं। शायद इसलिए कि वे ब्रिटिश इतिहासकारों से आगे निकले जा रहे हैं। और लिखते हैं विभिन्न भाषाओं के सैकड़ों लोकगीतों में 1857 की लड़ाई के नायकों का स्तुतिगान है। अंग्रेजों के अत्याचारों का, शोषण का, आतंक का वर्णन हैं। इससे मुक्ति की चाह है। सिपाही विद्रोह के विपरीत जन विद्रोह की छवि इन गीतों में है। इन गीतों में जन द्वारा वह इतिहास निर्मित है,जो कभी भी किसी भी शंका से ऊपर होता है[16]। सामंत और सिपाहियों को लगताार गरियाने वाले प्रियंवद जब इन लोकगीतों के साक्ष्य को प्रामाणिक मान लेते हैं, तब उनके फतवों और निष्कर्षो का ताश महल अपने आप भर भराकर गिर पडता है और किसी टिप्पणी की आवश्यकता नहीं रह जाती। यहाँ अमृतलाल नागर जी के इस उद्धरण को टीप लेने का मन करता हैं ''मैं राष्ट्र की कमजोरियों पर पर्दा डालने के पक्ष में नही हूँ, गदर के गौरव को लेकर अपने को बहलाना या धोखा देना भी नहीं चाहता, परंतु दोषों पर चौदह आने भर वजन, गुणों की ओर से आँखें मींच कर अपने जन को दिग्भ्रमित हतोत्साहित और कुंठित भी नहीं करना चाहता[17]।''

प्रियंवद ने यहाँ एक विचारणीय तथ्य की ओर संकेत किया है किसी एकाकी विस्फोट से ध्वंस होता है परिवर्तन नहीं[18]। जाहिर है कि वे 1857 की ओर ही संकेत कर रहे हैं। यहीं यह प्रश्न उठता है कि 1857 की क्रांति का अकस्मात विस्फोट हुआ या यह हमारे नवजागरण की सांस्कृतिक वास्तविकता की राजनीति परिणति थी। वस्तुत: हमें यह ध्यान रखना होगा कि जिस रूप में 1857 की घटनाओं

ने आकर लिया, उसके पीछे जातीय आत्म पहचान को पा लेने की छटपटाहट भी काम कर रही थी। सन् 57-58 में जन साधारण के जो असंख्य लोग अंग्रेजों को खिलाफ लड़े, वे दरअसल अपने अनेक प्रकार की घुटनों के खिलाफ भी लड़ रहे थे। भारतीय प्रजा मरता क्या न करता वाली स्थिति में जानी अनजानी सैकड़ों विवशताओं के प्रति जूझी थी अंग्रेजों से युद्ध तो जबरदस्त बहाने के रूप में हुआ था[19]।

वस्तुत: हमारी वह पीढ़ी जहाँ एक ओर अतीत की सडी गली रूढियों की दुर्गंध का अनुभव बहुत शिद्दत के साथ कर रही थी। वहाँ पश्चिम केंद्रित मूल्य बोध और आधुनिकीकरण की सीमाओं और संभावनाओं की भी पड़ताल कर रहे थे। पूरे समाज में परिवर्तन की एक लहर सी दौड़ रही थी किंतु नवजागरण के विचारकों ने अतीत हकी बर्बरताओं का विरोध करते हुए भी अतीत के दरवाजे बंद नहीं किये। इसके विपरीत उनहोंने भारतीय लोक संस्कृति के उच्चतर गुणों, खासकर मानवीय उदारता मिश्रणशीलता और सत्ता वर्ग के दृष्टिकोण के पार देखने के उसके सनातन संस्कार को पहचाना। भारतीय नवजागरण एक परिवर्तन ही नही एक निरंतरता भी है। इसी तरह उसने पश्चिमी से शिक्षा, सामाजिक न्याय, विकास और स्वतंत्रता के कई आदर्श लिए। फलत: भारतीय नवजागरण निरंतरता ही नहीं एक परिवर्तन भी है[20]। एक तरफ सत्ता वर्ग क दृष्टिकोण की निर्मम पड़ताल और दूसरी और पश्चिमी चिंतन के उत्तमांश के स्वीकार ने भारतीय नवजागरण को परिवर्तनशील बनाया। यह परिवर्तनशील निरंतर नवजागरण हमारे भारतीय जनमानस के अवचेतन में रिसता और फैलता गया। 1857 के संग्राम के भले ही कुछ तात्कालिक कारण रहे हों किंतु नवजागरण में जिस सांस्कृतिक वास्तविकता को आकर दिया था। उसके राजनीति कवास्तविकता में परिवर्तन के लिए सत्ताा पक्ष की दुरभि संधियों का जो ज्ञान होना चाहिए, अब जनता उसमें दीक्षित होने लगी थी। वह अब प्रतयक्ष देख पा रही थी कि अंग्रेज इस देश को समृद्ध करने के लिए अवतरित नहीं हुए हैं बल्कि वे भौतिक और मानसिक रूप से इस देश को गुलामी की जंजीरों में जकड़ने के लिए यहां आये हैँ। सांस्कृतिक आत्मविश्वास अर्जित कर लेने के उपरान्त भारतीय गुलामी के कारणों के उन्मूलन के लिए कटिबद्ध थे और इनमें सबसे बडी बाधा थी- विदेशी शासन। इस विदेशी शासन ने एक ओर तो किसानों और मजदूरों को आर्थिक रूप से पूरी तरह निचोड़ लिया और दूसरी ओर ईसाईकरण के प्रयासों से हमारी सांस्कृतिक पहचान को धुँधलाने का दुश्टतापूर्ण प्रयास किया। मिशनरियों की मुख्य भूमिका यहाँ देशभक्ति को भावना को रोकने वैज्ञानिक चिंतन का विरोध करने, धार्मिक रूढिवाद का प्रसार करने और अंग्रेजी राज्य की रक्षा करने की थी। सन सत्तावन के संघर्ष में राजनीति से तटस्थ न रहकर वे अंग्रेजी राज्य के सहायक बनकर सामने आये[21]। ध्यान देने की बात यह है कि ये मिशनरी जहाँ एक ओर नवजागरण की धारा को कट्टर रूढिवाद की ओर मोडने का प्रयास कररहे थे, वहाँ दूसरी ओर वे अंग्रेजी साम्राज्य के सहायक की भूमिका निभा रहे थे। ये लोग गाँव गाँव और नगर नगर घूम घूमकर ईसाई धर्म का प्रचार कर हे थे। दूसरी ओर स्वयं ब्रिटिश सेना के अधिकारी साम, दाम, दंड, भेद सभी नीतियों का प्रयोग करके भारतीय सैनिकों को इसाई बनाने में लगे थे। 15 अप्रैल 1857 को लैफ्टिनेण्ट कर्नल व्हीलर ने असिस्टेन्ट अजटेंट जनरल के नाम पत्र लिखा जिसमें पूरी बेशर्मी के साथ स्वीकार किया जहाँ तक इस सवाल का सम्बन्ध है कि मैंने सिपाहियों और अन्य लोगों को ईसाई बनाने की कोशिश की है या नहीं, मैँ नम्रतापूर्वक उत्तर दूँगा कि मेरा उद्देश्य यही रहा है और मैं समझता हूँ कि हर ईसाई का यही उद्देश्य और लक्ष्य रहा है[22]। ये सिपाही उतने सीधे और भोले नहीं थे जितना इन्हें इनके सैन्य अधिकारियों ने समझा था। भले ही अब ये वृतितजीवी सैनिक थे किन्तु इनमे से अधिकांश अंग्रेजों के आर्थिक शोषण के शिकार किसान परिवारों से आये थे। जिस समय नवजागरण के आंदोलन ने वैचारिक क्रान्ति का सूत्रपात कर दिया था, तब ऐसा कैसे सम्भव है कि गाँव इन विचारों से अछूते रह गये हों। भले ही ये नये विचार किताबी रूप में वहाँ न पहुँचे हो किन्तु इनको लेकर वहाँ चर्चा न होती हो ऐसा सम्भव नहीं था। स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द जैसे नवजगारण के पुरोधाओं के जीवन और विचारों ने निश्चय ही अपनी सीमाओं में गाँवों को भी उद्वेलित और प्रभावित किया होगा। और हमारे ये किसान युवक भी इन विचारों की धरोहर गाँठ में बाँधकर सेना में ले गये होंगे। यदि ऐसा न होता तो ये भी अपनी वृत्ति सम्बन्धी छोटी-मोटी माँगों के लिए अंग्रेज सैन्य अधिकारियों के समक्ष गिड़गिड़ाते और मन मारकर बैठ जाते। किन्तु ये सुविधायें जुटाना उनका उद्द्देश्य कहाँ था। वे तो एक विराट मिशन के पीछे खड़े थे गुलामी की बेड़ियों को तोड़कर स्वराज्य की स्थापना। इसीलिए देश के ह्दय की धडकन दिल्ली की ओर बढे जहाँ वे इस आजादी की लडाई को परवान चढा सकें। जो विचारों के धरोहर इन सैनिकों के पास थी, उसी ने उन्हें अपने स्वधर्म को लेकर आत्मविश्वास से मंडित किया। और ये अपने धर्म की रक्षा के लिए ईसाईकरण के विरुद्ध ताल ठोककर खड़े हो गये। इस प्रकार ईसाई मिशनरियों की कार्यवाही का विरोध अनेक दिशओं से हो रहा था इस विरोध में वे नौजवान भी थे, जो किसा धार्मिक रूढिवाद में विश्वास न करते थे उसमें वे सुधारक थे, जो भारतीय समाज को अनेक कुरीतियों से बचाना चाहते थे किंतु धर्म परिवर्तन के लिए तैयार न थे[23]। ये नवयुवक ही नवजागरण के अग्रदूत थे, जो पश्चिमी ज्ञान के उत्तमांश को अपनी परम्पराओं में समाविष्ट करने पर तो सहमत थे किंतु ईसाई धर्म अपनाना इन्हें किसी भी रूप में ग्राह्य न था। कुछ मिशनरियों ने राजा राममोहन राय के खुले विचारों से प्रोतसाहित होकर उन्हें ईसाई बनाने की जो तोड़ कोशिश की। किंतु उन्होंने पाया कि बाद को वह बुरी संगत में पड गया और अब उसके ईसाई होने की उतनी ही कम संभावना है, जितनी मेरी हिंदू होने की[24]।

यही नहीं उन्हें ईसाई बनाने के लिए जिस विलियम ऐडन को लगाया गया था, वह भी राम मोहन राय के विचारों का प्रचार करने लगा जिन विचारों को ये ईसाई मिशनरी कुफ्र कहते थे[25]।

1857 के रण बांकुरे भी ईसाईकरण के विरुद्ध कटिबद्ध हो गये तो उसके मूल में नवजागरण के पुरोधाओं की प्रेरणा कोई आश्चर्य का विषय नहीं।

नवजागरण के उस दौर में उदारतावादी, तर्कपूर्ण और मानवतावादी चिंतन यद्यपि अपने उठान पर था किंतु ऐसे व्यक्तियों और समुदायों की कमी नहीं थी जो या तो अपने अतीत अथवा पश्चिमीकरण के प्रति अतिवादी दृष्टिकोण रखते थे। कुछ अपने अतीत को छाती से चिपकाते बदलते परिवेश से आँखें बंद किए थे और कुछ पश्चिम आधुनिकीकरण और पाश्चात्य संस्कृति के रंग में रंगकर अपने अतीत को स्वयं से काटकर अलग कर देना चाहते थे। कितु स्वतंत्रता की सनातन आकांक्षा ने हर मोड पर उन्हें अतीत के अंतर विरोधों और पश्चिम के छल से बाहर लाकर भारतीय आत्म पहचान के लिए प्रेरित किया। भारतीयों ने नवजागरण काल में अतीत और पश्चिम से अपने रिश्तों को बार बार जाँचा। यह देखकर सुखद विस्मय होता है कि वे तब किस तरह कुछ बिंदुओं पर अतीत का पुन: आविष्कार कर रहे थे, कुछ बिंदुओं पर उससे आजाद भी हो रहे थे। पश्चिम से अपने रिश्ते को भी भारत के निवासियों ने कुछ इसी तरह एक नया मोड दिया, कुछ बिंदुओं पर उसका अनुकरण और कुछ बिंदुओं पर उससे मुक्ति[26]। स्वतंत्रता की इस सनातन आकांक्षा ने ही ब्रिटिश उपनिवेशवाद से राजनीतिक मुठभेड के लिए 1857 के योद्धाओं को प्रेरित किया। वस्तुत: भारतीय नवजागरण स्वयं में कोई केंद्रबद्ध या किसी एक दिशा में प्रवाहित आंदालेन नही ंथा। बल्कि वह बहुमुखी उद्देश्यों, भिन्न विचारधारों और पृथक परिणतियों की विचार सुधार की धाराओं में प्रवाहित हो रहा था कितु उसे एकरूपता देने का कार्य उस साम्राज्य विरोध ने किया जो 1857 का प्रमुख मिशन था। नवजगारण ने जिस सांस्कृतिक आधुनिकता को प्रस्तावित किया, उसे राष्ट्रीय स्वरूप देने का श्रेय 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम को जाता है। सच तो यह है कि कोई भी नवजागरण तब तक अपनी पूर्णता पर नहीं पहुँच सकता, जब तक कि वह साम्राज्यवाद और उपनिवेशवादियों के षड्यंत्रों के प्रति सचेत न हों। जब तक वह स्वतन्त्र होने की छटपटाहट को पूरी शिद्दत के साथ महसूस न करे। नवजागरण ने हमें वैचारिक रूप से मुक्त करने में महतवपूर्ण भूमिका निभाई किन्तु 1857 ने भौतिक रूप से साम्राज्यवाद की औपनिवेशक बेडियाँ काटने के भौतिक प्रयासों पर बल दिया। अंग्रेजों के खिलाफ लड़ने के लिए सबसे पहले सिपाही उठे। सामन्तगण सिपाहियों के कारण ही संघबद्ध हुये थे। सिपाही आखिरकार हमारी आम जनता के प्रतिनिधि ही तो थे[27]।

इन आम जनता के प्रतिनिधियों ने जिस स्वातंत्रय समर का बिगुल फूँका, वह नवजागरण की वैचारिक मुक्ति का ही पूरक था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि भारत का यह प्रथम स्वतन्तत्रता संग्राम सफल न हो सका किन्तु इस संग्राम की नींव पर ही भविष्य के स्वतन्त्रता आन्दोलन का विशाल भवन खड़ा हो सका। अंग्रेजी दमन के सम्मुख यह आन्दोलन समाप्त नहीं होता केवल धुँधला पड़ता है और एक विशिष्ट परिणाम ये देखना में आता है कि सामंतवर्ग जहाँ महारानी विक्टोरिया के घोषणा पत्र की मृगमरीचिका के प्रभाव से ब्रिटिश साम्राज्यवाद की गोद में खेलने लगता है, वहाँ नवजागरण के संस्कारों में दीक्षित मध्वर्ग ब्रिटिश शासन के कुयप चेहरे को देश के सामने लाने का दायित्व अपन कंधो पर ले लेता है। इन्हीं को लक्षित करके अवध के भूतपूर्व सहायक कमिश्नरी विलियम नाइटन ने 1867 में लिखा शिक्षित बंबाल और शिक्षित सिख, लखनऊ के केनिंग कालेज का शिक्षित विद्यार्थी और त्रावणकोर का शिक्षित निवासी, सभी एक ही तरह अपने को भारत का निवासी समझते हैं और सभी मिलकर विदेशियों के खिलाफ खड़े होने को तैयार हैं। यह बिल्कुल नई बात है और भविष्य में इसके परिणाम बहुत व्यापक होंगे[28]।

ब्रिटिश अधिकारियों में इस राष्ट्रवाद को लेकर जो थरथराहट थी, उसमें 1857 की भूमिका को किसी भी दृष्टि से कम करके नहीं आंका जा सकता। हाँ, बाद में यह अन्तर अवश्य आया कि अब भारतीय यह जान चुके थे कि उपनिवेशवादी शक्तियों का मुकाबला शस्त्र बल से नहीं बुद्धि बल और व्यापक जनसमर्थन जुटाकर किया जा सकता ळै। 1857 के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम में शस्त्र बल का प्रयोग विफल हो जाने की कचोट ने ही एक नयी रणनीति और एक नयी उठान के साथ स्वतन्त्रता के भावी आंदोलन को दिशा दी। हिन्दी क्षेत्र में घटित 1857 के स्वाधीनता संग्राम ने न केवल अंग्रेजी राज को देखने का नजरिया बदल दिया, बल्कि भारत के नवजागरण को एक नया चरित्र भी दिया। हिन्दी नवजागरण में सामन्ती भेदभाव, धार्मिक असहिष्णुता और कूपमंडूकता विरोधी तत्व कम नहीं थे। राष्ट्रीय कोण से उपनिवेशवाद की आलोचना और आधुनिकता कोण से सामाजिक धर्मिक रूढियों की आलोचना उसकी दो बड़ी खूबियाँ हैं। भारत में उपनिवेशवाद की जड़ें भले उखड़ न पायीं हों, आधुनिकता को राष्ट्रीय ढाँचे में विकसित करने की योजना सामने आ गई थी। उसी तरह अनुदारता या अंधराष्ट्रवाद न मिट पाया हो राष्ट्रीयता को आधुनिक ढाँचे में लाने का अभियान छिड़ चुका था[29]।

हिन्दी नवजागरण के अग्रदूत भारतेन्दू ने जिस नफासत से उपनिवेशवाद के चरित्र को नंगा किया है। वह 1857 से नवजागरण के रिश्ते को एक नया संदर्भ देता है। भारतेंदु औपनिवेशिक आधुनिकीकरण से गदगद थे क्योंकि उसका इस्तेमाल साम्राज्यवाद विरोधी मुहिम में किया जा सकता था किंतु अंग्रेजों द्वारा किए गए आर्थिक शोषण और विसंस्कृतीकरण पर कठोर प्रहार करने में वे कभी न ही चूके।

वस्तुत: नवजागरण केपहले उठान (1857 से पहले) और नवजागरण के दूसरे उठान (1857 के बाद) 1857 की स्थिति मध्यवर्ती है। वह पहले उठान से प्रेरणा लेकर शस्त्रबल से सांस्कृतिक वास्तविकता को राजनीतिक वास्तविकता में बदलने की कोशिश करता है और दूसरे उठान में वह आगे की रणनीति निर्धारित करने का प्रस्थान बिंदु बनकर भावी स्वतंत्रता संग्राम का पथ प्रशस्त करता है। 1857 के बाद अंग्रेजी शासन का चरित्र नवजागरण के दूसरे उठान का लक्ष्य बन गया। एक ऐसा लक्ष्य, जिस पर तलवार का नहीं, तदबीर का प्रहार करना था। सच तो यह है कि 1857 में पराजय बलिदान और उसके उद्देश्यों की नहीं हुई बल्कि पराजय हुई हम पर लदी हमारी रुढ़ियों और कुछ तात्कालिक सीमाओं की। स्वतंत्र होने की छटपटाहट नवजागरण की सम्पूर्ण ऊर्जा के साथ उपनिवेशवाद से मुठभेड़ की नयी रणनीति के साथ 1857 एक नये रूपाकार में ढलकर हमारी स्वतंत्रता का वाहक बना।

सन्दर्भ-सूची

1. संस्कृति की उत्तर कथा, शंभुनाथ, पृ. 143
2. आधुनिक भारत का इतिहास, सं. राम लखन शुक्ल धार्मिक एवं सामाजिक सुधार ओंदोलन : कार्य क्षेत्र, स्वरूप, और प्रभाव, जगदीश नारायण सिन्हा पृ. 266
3. संस्कृति की उत्तर कथा, शंभुनाथ पृ. 112
6. उद्धृत सामाजिक क्रांति के दस्तावेज सं. शंभुनाथ, पृ. 77
7. आधुनिक भारत का इतिहास, सं. रामलखन शुक्ल, धार्मिक एवं सामाजिक सुधार आंदोलन : कार्यक्षेत्र, सवयप और प्रभाव जदीश नारायण सिन्हा पृ. 227
8. अकार, अंक-15, दिसम्बर 2005 सं. गिरिराज किशोर, 1857 एक घूसर कोलाज पुस्तकांश, प्रियंवद पृ. सं. 87
9. वहीं, पृ. 84
10. वहीं पृ. 86
11. वही, पृ. 88
12. राजा शिव प्रसाद सितारे हिंद : प्रतिनिधि संकलन, सं. वीर भारत तलवार, 1857 का बलवा इतिहास मितिर नाशक का दूसरा खंड, पृ. 32
13. आधुनिक भारत का इतिहास : एक नवीन मूल्यांकन, बी.एल. ग्रोवर, पृ. 256
14. अकार अंक-5 दिसम्बर, 2005 सं. गिरिराज किशोर, 1857 एक घूसर कोलाज पुस्तकांश प्रियवंद, पृ. सं. 92
15. वही, पृ. 80-81
16. वही, पृ. 74
17. अमृत लाल नागर रचनावली, सं. शरद नागर, छठा भाग, गदर के फूल, पृ. 61
18. अकार अंक-5 दिसम्बर, 2005 सं. गिरिराज किशोर, 1857 एक धूसर कोलाज पुस्तकांश, प्रियवंद, पृ. सं. 87
19. अमृत लाल नागर रचनावली, सं. शरद नागर, छठा भाग, गदर के फूल, पृ. 15
20. संस्कृति की उत्तरकथा, शंभुनाथ पृ. 112
21. 1857 की राज्य क्रांति, रामविलास शर्मा पृ. 66
22. उद्धृत, 1857 की राज्य क्रांति, रामविलास शर्मा 61
23. वही, पृ. 61
24. बिशप मिडिल्टन की राजा राममोहनराय के संबंध में प्रतिक्रिया पृ. 632
25. वहीं. पृ. 156
26. संस्कृति की उत्तर कथा शंभुनाथ, पृ. 112
27. अमूतलाल नागर रचनावली, सं. डॉ. शरद नागर, पृ. 224
28. The policy of the future in india, W. Nighten, P. 202
29. हिंदी नव जागरण और संस्कृति, शंभुनाथ, पृ. 10